सुबह:

मार्क्सवाद और राष्ट्रीय मुक्ति

डोजियर नं. 37
ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान
फरवरी, 2021

सुबहः

मार्क्सवाद और राष्ट्रीय मुक्ति

डोजियर नं. 37 ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान
फरवरी, 2021

> ‘सच है, हम पथभ्रष्ट अंधकार में ठोकर खा सकते हैं, हम गहरी खाई की कगार पर खड़े हो सकते हैं, लेकिन हम डरने वाले नहीं हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि सुबह देखने के लिए हर किसी को अंधेरी रात से गुज़रना पड़ता है।’
>
> नाजीयाहनुम (तुर्की), पूरब के लोगों की पहली कांग्रेस, बाकू, सोवियत संघ, 1920.

अपने जीवन के अंतिम दिनों में कार्ल मार्क्स ने यूरोप के तटों को छोड़कर एक देश की यात्रा की जो औपनिवेशिक प्रभुत्व के अधीन था। 1882 की बात है जब वे अल्जीरिया गए। मार्क्स ने अपनी बेटी लौरा लाफ़ार्ग को लिखा, ‘मुसलामानों के लिए अधीनता जैसी कोई चीज़ नहीं है।’ ‘एक सच्चे मुसलमान’ के लिए असमानता एक घृणास्पद विषय है। मार्क्स ने महसूस किया, लेकिन ये भावनाएँ ‘क्रांतिकारी आंदोलन के बिना ठंडी पड़ जाएँगी और समाप्त हो जाएँगी।’ उन्होंने सोचा कि क्रांतिकारी समझ का एक आंदोलन वहाँ आसानी से उभर सकता है जहाँ असमानता के ख़िलाफ़ एक गहरी सांस्कृतिक भावना रही हो। मार्क्स ने अल्जीरिया या इस्लाम के बारे में अधिक नहीं लिखा। यह एक पिता द्वारा अपनी बेटी के लिए भेजा गया संदेश था। लेकिन इससे हमें मार्क्स की संवेदनशीलता के बारे में बहुत कुछ पता चलता है।

मार्क्सवाद मौलिक रूप से इस विचार के विरोधी हैं कि कुछ लोगों पर शासन करने की आवश्यकता है क्योंकि उन्हें नस्लीय या सामाजिक रूप से हीन माना जाता है। वास्तव में, मार्क्स के शुरुआती लेखन से ही मार्क्सवाद ने हमेशा मानव स्वतंत्रता को एक सार्वभौमिक उद्देश्य समझा है। मानव दासता और मानव की मज़दूरी में बेगार की हद तक गिरावट के बारे में मार्क्स की भविष्यवाणी चेताने वाली थी। 1865 में फ़र्स्ट इंटरनेशनल में मार्क्स ने बयान जारी करके माँग की कि संयुक्त राज्य अमेरिका के सभी नागरिकों को ‘बिना किसी भेद-भाव के स्वतंत्र और समान घोषित किया जाए’ और अमेरिका को चेतावनी दी कि दासता की निष्ठुर विरासत से निर्णायक रूप से निपटने में विफल होने पर ‘अपने देश को अपने लोगों के ख़ून से सींचना’ पड़ सकता है। महान अफ़्रीकी अमेरिकी बुद्धिजीवी डब्ल्यू.ई.बी. डु बोइस ने अपनी महान कृति ब्लैक रिकंस्ट्रक्शन इन अमेरिका (1935) में इस बयान को ‘साहसिक’ हस्तक्षेप बताकर इसका स्वागत किया।

कैपिटल (1867) में मार्क्स ने सबसे प्रसिद्ध पंक्तियों में से एक में इस बात को रेखांकित किया गया है कि ‘पूँजीवादी उत्पादन के युग की गुलाबी सुबह’ एंटीसेप्टिक बैंक या कारख़ाने में नहीं पाई जा सकती है। पूँजीवाद की उत्पत्ति को- अन्य प्रक्रियाओं के साथ-साथ – विध्वंस में, आदिवासी आबादी को खानों में दास बनाए जाने और दफ़ना दिए जाने में, ईस्ट इंडीज़ की विजय और लूटपाट की शुरुआत में, वाणिज्यिक लाभ के लिए अफ़्रीका को अश्वेत लोगों के शिकारगाह में तब्दील कर दिए जाने में तलाशना चाहिए।’ दुनिया भर में मानवता के ह्रास के साथ पूँजीवाद का विकास तथा विस्तार हुआ। तब कोई आश्चर्य नहीं कि उपनिवेशवाद विरोध मार्क्सवादी आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

जैसे ही आप उत्तरी अटलांटिक क्षेत्र की सीमाओं के बाहर यूरोप से संयुक्त राज्य अमेरिका की तरफ़ बढ़ते हैं, तो मार्क्सवाद की श्रेणियों पर 'थोड़ा दबाव' पड़ना ही था,और ऐतिहासिक भौतिकवाद के आख्यान को बढ़ाया जाना ही था, जैसा कि कैरिबियाई बुद्धिजीवी फ़्रांज़ फ़ेनॉन ने तर्क दिया था। अन्यथा, लोग उन श्रेणियों को अपना रहे होंगे जिनके पास निश्चित रूप से एक सार्वभौमिक अनुप्रयोग था, लेकिन जिसे हर जगह उसी तरह से लागू नहीं किया गया था। कुछ मार्क्सवादियों ने द्वंद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद जैसे व्यापक विषय को अपने स्वयं के संदर्भों तथा अंतर्विरोधों के अनुरूप व्याख्यायित किए बिना ही अपना लिया।

यह मार्क्सवादी परंपरा के सबसे महत्वपूर्ण तत्वों में से एक रहा है, और जिसके बारे में बहुत कम विचार किया गया। इसके अलावा, उपनिवेशों में, पूँजीवादी संचय और चोरी की संरचना ने इस तथ्य को सुनिश्चित किया कि ये क्षेत्र पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा विकसित अपनी उत्पादक शक्तियों को नहीं देखें; उनके श्रम के साधनों का सामाजिक विकास (मशीनरी और बुनियादी ढाँचे सहित) और उनकी मानवीय क्षमता पर उनके औपनिवेशिक शासकों का विशेषाधिकार रहे। सामाजिक विकास के इस ठहराव ने औपनिवेशिक क्षेत्रों में मार्क्सवादियों के लिए चुनौतियाँ खड़ी कर दीं, जिसकी वजह से उनके कार्यों का विस्तार हुआ और चुनौतियाँ बढ़ गईं: उन्हें औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकना था, एक प्रतिकूल परिस्थितियों में उत्पादक शक्तियों का विकास करना था और समाजवाद के प्रति सामाजिक संबंधों को आगे बढ़ाना था। साम्राज्यवादी ताक़तों द्वारा किए गए निरंतर हमले के दौरान, जिसमें खुला युद्ध (जैसा कि दशकों तक वियतनाम ने अनुभव किया) के साथ-साथ हाइब्रिड युद्ध तकनीक (प्रतिबंधों और अवरोधों सहित) भी शामिल है, इन प्रक्रियाओं को विकसित किया जाना था ।

डोज़ियर संख्या 37 एक संवाद का निमंत्रण है। मार्क्सवाद और राष्ट्रीय मुक्ति की उलझी हुई परंपरा के बारे में एक बातचीत है - एक ऐसी परंपरा जो अक्टूबर क्रांति से निकलती है और जो बीसवीं और इक्कीसवीं सदी के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष में अपनी जड़ें जमा लेती हैं। यह व्यापक बातचीत के विषय में छोटा-सा परिचय है जिसमें कई अलग-अलग क्रांतिकारी आंदोलन शामिल हैं, जिनमें से ज़्यादातर की जड़ें अफ़्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका महाद्वीपों में हैं। ट्राईकॉन्टिनेंटल: सामाजिक शोध संस्थान में हम इस परंपरा के बारे में एक गंभीर चर्चा को फिर से शुरू करने के इच्छुक हैं।

W. E. B. DU BOIS
BLACK RECONSTRUCTION IN AMERICA
1860-1880

मार्क्सवाद की जीवित आत्मा

मार्क्स ने पहली बार अपने सिद्धांत को जिस इलाक़े में विकसित किया था, जब मार्क्सवाद उस क्षेत्र से बाहर फैला तो उसे सोवियत नेता व्लादिमीर लेनिन (1870-1924) के उस वक्तव्य से जूझना पड़ा जो उन्होंने 1920 में दिया था, 'मार्क्सवाद की जीवित आत्मा का सार है- 'ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण।' वास्तव में, लेनिन के योगदान ने यूरोप के बाहर मार्क्सवाद के मूल्यांकन के लिए दरवाज़ा खोल दिया।

विभिन्न सामाजिक संदर्भों में मार्क्सवाद की रचनात्मक व्याख्या के लिए 'ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण' की आवश्यकता को स्वीकारने वाले लेनिन अकेले व्यक्ति नहीं थे। क्यूबा के बुद्धिजीवी और क्रांतिकारी जूलियो एंटोनियो मैला (1903-1929) ने समझा कि समय का मिजाज़ समाजवाद के अनुरूप था: 'सामान्य रूप से समाजवाद का ध्येय इस समय का ध्येय है: क्यूबा में, रूस में, भारत में, संयुक्त राज्य अमेरिका में और चीन में - हर जगह'। लेकिन समाजवाद के लिए 'एक मात्र बाधा' थी 'विभिन्न परिस्थितियों की वास्तविकता के अनुरूप इसे अपनाने की'। मैला ने लिखा, मार्क्सवादियों को ऐसा नहीं करना चाहिए कि 'भिन्न परिवेश में भिन्न लोगों द्वारा की गई क्रांतियों का अनुकरण कर लिया जाए'।

दक्षिण अफ़्रीका में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना के शुरुआती दिनों से, इसके सदस्यों ने ग़ैर-यूरोपीय श्रमिक वर्ग के बीच संगठन के महत्व के बारे में चर्चा की। मोज़ेज़ कोटेन (1905-1978) - जिन्होंने 1939 से लेकर अपनी मृत्यु तक पार्टी का नेतृत्व किया - ने 1934 में पार्टी के जोहान्सबर्ग ज़िला कमेटी को लिखे एक पत्र में तर्क दिया कि यह ज़रूरी था कि 'पार्टी और अधिक अफ़्रीकी बन जाए' और 'दक्षिण अफ़्रीका पर विशेष ध्यान दे, इस देश की स्थितियों का अध्ययन करे और प्रामाणिक जानकारी के आधार पर मेहनतकश जनता की माँगों को उठाए।'

इतालवी मार्क्सवादी एंटोनियो ग्राम्शी (1891-1937) ने Avanti (दिसंबर 1917) में व्यंग्यपूर्वक लिखा था कि रूस की क्रांति पूँजी के ख़िलाफ़ एक क्रांति थी, जिसका मतलब है मार्क्स के परिपक्व लेखन में दी गई पूर्व सूचना के ख़िलाफ़ क्रांति। लेकिन पूरी तरह से ऐसा नहीं कहा जा सकता। उन्नत पूँजीवादी देशों में कई कारणों से क्रांति नहीं हुई, और सफल क्रांति मुख्य रूप से कृषक समाजों में हुई - जिसे लेनिन ने पूँजीवादी व्यवस्था में 'सबसे कमज़ोर कड़ी' कहा था। यह स्वयं मार्क्स के संपूर्ण सिद्धांत का एक विस्तार था जिसमें विचारधारा को जितना महत्व दिया गया है उतना ही महत्व संरचना को भी दिया गया है। इस उभार के व्यक्तिपरक पहलू को कई प्रक्रियाओं द्वारा बाधित किया गया था: समाजवाद के ख़िलाफ़ दुष्प्रचार का विकास, दमनकारी तंत्र में वृद्धि, और श्रमिक वर्ग के आंदोलन का 'अभिजात वर्ग के श्रमिकों' के हाथों में चला जाना। इस तथ्य के बावजूद ऐसा था कि क्रांति की वस्तुपरक परिस्थितियों में एक साथ कई प्रकार के संकट उत्पन्न कर दिए थे। वह

व्यक्तिपरक पहलू - जनता के बीच आंदोलन, एक पार्टी का अस्तित्व, एक रचनात्मक मार्क्सवाद का विकास - 1917 में रूस से लेकर 1959 में क्यूबा तक सबसे कमज़ोर कड़ी में बहुत से कारणों की वजह उभरकर सामने आया।

मैला ने लिखा, क्रांतिकारी को लेनिन को दोहराने की आवश्यकता नहीं है; क्रांतिकारी को लेनिन की उस सलाह को मानना चाहिए कि मार्क्सवाद के साथ रचनात्मक होने के ज़रूरत है। क्रांतिकारी को मार्क्सवाद को धर्मशास्त्र की तरह नहीं अपनाना चाहिए - अक्षर की तरह इसका पालन करना चाहिए - और न ही क्रांतिकारी को हर व्यक्तिगत मामले को असाधारण मानना चाहिए। विचारणीय बिंदु यह है कि प्रत्येक देश के समृद्ध इतिहास के साथ-साथ सार्वभौमिक और विशेष की द्वंद्वात्मक समझ विकसित करने के लिए, और प्रत्येक स्थान में ये कैसे उभरे साथ-ही-साथ पूँजीवादी सामाजिक संबंधों की व्यापकता को समझने के लिए पूँजीवादी सार्वभौमिकता की प्रकृति को समझना है। लेनिन ने यही किया, जिसने रूस में क्रांति का आग़ाज़ करने में योगदान दिया।

मैक्सिको और भारत, चीन और दक्षिणी अफ़्रीका जैसे कृषक समाजों ने लेनिन के मार्क्सवाद के अनुवाद को कारख़ाने के संदर्भ से उठाकर खेतों के संदर्भ के अनुरूप बदल दिया। लेनिन ने रूस में पूँजीवाद के विरोधाभासों पर काम किया, जिससे उन्हें यह समझने में मदद मिली कि कैसे बिखरे हुए ज़ार साम्राज्य में कृषक वर्ग का कुछ तबक़ा भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के रूप में सर्वहारा वर्ग का हिस्सा थे। इस समझ के आधार पर लेनिन ने ज़ार की सत्ता और पूँजीपतियों के ख़िलाफ़ मज़दूर-किसान गठजोड़ की वकालत की। लेनिन ने बड़े पैमाने पर संघर्ष और सैद्धांतिक अध्ययन के साथ अपने जुड़ाव से समझा कि सोशल डेमोक्रेट्स - बुर्जुआ तथा कुलीन वर्ग के सबसे उदार तबक़े के रूप में - बुर्जुआ क्रांति को चलाने में सक्षम नहीं थे, जो आंदोलन अकेले ही किसान तथा मज़दूर वर्ग को मुक्ति की दिशा में आगे लेकर जाए। यह काम टू टैक्टिस ऑफ़ सोशल डेमोक्रेसी इन द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन (1905) के माध्यम से हुआ। टू टैक्टिस शायद पहला बड़ा मार्क्सवादी ग्रंथ है जिसने समाजवादी क्रांति की आवश्यकता को साबित किया, यहाँ तक कि एक 'पिछड़े' देश में भी, जहाँ दासता की संस्थाओं को तोड़ने के लिए मज़दूरों और किसानों को एकजुट होने की आवश्यकता होगी। इस पुस्तक से यह पता चलता है कि लेनिन उन विचारों से बचते हैं कि रूसी क्रांति पूँजीवादी विकास को छलांग लगाकर पार कर सकती है (जैसा कि लोकलुभावन, नरोदनिकों ने सुझाव दिया था) या उसे पूँजीवाद से गुज़रना पड़ेगा (जैसा कि उदार लोकतांत्रिकों ने तर्क दिया)। दोनों में से कोई भी रास्ता संभव या आवश्यक नहीं था। एक सीमित प्रकार का पूँजीवाद रूस में पहले से ही प्रवेश कर चुका था - एक तथ्य जिसे लोकलुभावनवादियों ने स्वीकार नहीं किया था - और इसे एक मज़दूर-किसान क्रांति से निपटा जा सकता था - एक तथ्य जिसे लेकर लिबरल डेमोक्रेट्स में मतभेद था। हालाँकि, पूँजीवाद उत्पादक शक्तियों को आगे नहीं बढ़ाएगा, जो एक ऐसा कार्य था जिसे अनिवार्य रूप से समाजवादियों को ही करना था। 1917 की क्रांति और सोवियत प्रयोग ने लेनिन की बात को साबित कर दिया।

यह स्थापित करने के बाद कि ग़रीब देशों में उदारवादी कुलीन वर्ग मज़दूर-किसान क्रांति या बुर्जुआ क्रांति का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं होगा, लेनिन ने अंतर्राष्ट्रीय परिस्थिति की ओर अपना ध्यान केंद्रित किया। स्विटज़रलैंड में निर्वासन में रह रहे लेनिन ने देखा कि 1914 में सोशल डेमोक्रेट्स ने युद्धोन्माद के सामने आत्मसमर्पण कर दिया और श्रमिक वर्ग को विश्व युद्ध में झोंक दिया। सोशल डेमोक्रेट्स के विश्वासघात से निराश लेनिन ने 1916 की शुरुआत में साम्राज्यवाद लिखा, जिसमें उन्होंने वित्त पूँजी और एकाधिकार फ़र्मों के साथ-साथ अंतर-पूँजीवादी और अंतर-साम्राज्यवादी संघर्ष के विकास की स्पष्ट समझ विकसित की। इसी पुस्तक में लेनिन ने पश्चिम में समाजवादी आंदोलनों की सीमाओं का पता लगाया - जहाँ अभिजात वर्ग के श्रमिकों ने समाजवादी उग्रवाद को अवरोधित कर दिया था - और पूरब में क्रांति की संभावना - जहाँ साम्राज्यवादी शृंखला की 'सबसे कमज़ोर कड़ी' को खोजा सा सकता था। इस प्रकार साम्राज्यवाद के इस तरह के एक स्पष्ट मूल्यांकन ने यह सुनिश्चित किया कि लेनिन ने राष्ट्रों के अधिकारों के लिए आत्मनिर्णय के लिए एक मज़बूत स्थिति विकसित की, चाहे ये राष्ट्र ज़ार साम्राज्य के भीतर रहे हों या वास्तव में कोई अन्य यूरोपीय साम्राज्य। यहाँ, हमें 1919 से लेकर 1943 तक कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (कॉमिन्टर्न) में विकसित किए गए USSR के उपनिवेशवाद-विरोधी आधार का पता चलता है। यही वह चीज़ है जो डच इस्ट इंडीज़ से एंडीज़ के उपनिवेशवाद-विरोधी उग्रवादी को आकर्षित करता है।

PIERRE BOURDIEU
LOÏC J.D. WACQUANT

एक ओजपूर्ण रचना

एंडीज़ में, जोस कार्लोस मारियातेगी (1894-1930) ने 'एनिवर्सरी एंड बैलेंस शीट' (अमौता, 1928) में लिखा, 'निश्चित रूप से हम नहीं चाहते हैं कि लैटिन अमेरिका में समाजवाद किसी और की नक़ल या अनुकरण हो। यह एक ओजपूर्ण रचना होनी चाहिए। हमें अपनी वास्तविकता के साथ, अपनी भाषा में इंडो-अमेरिकी समाजवाद को जीवन देना होगा।' मारियातेगी ने क्या किया? उन्होंने अपने मार्क्स और अपने लेनिन को पढ़ा और एंडियन क्षेत्र की सामाजिक वास्तविकता का गहराई से अध्ययन किया। मज़दूर-किसान गठजोड़ के लेनिन के सिद्धांत ने मारियातेगी के मार्क्सवाद में बुनियादी इज़ाफ़ा किया। एक कृषक समाज में समाजवादी क्रांति ज़मींदारी प्रथा की गिरफ़्त के ख़िलाफ़ आंदोलन के बिना संभव नहीं होगी। पेरू के संदर्भ में, किसान विद्रोह समुदाय (अयलू) के पुराने विचारों से उभरा, जिसमें इंडियंस ने व्यक्तिवाद से इनकार कर दिया; जैसा कि मारियातेगी ने सेवेन इंटरप्रेटिव एस्सेज़ ऑन पेरुवियन रियलिटी (1928) में लिखा, 'साम्यवाद इंडियन की एकमात्र रक्षा-कवच रहा है।' पेरू में उत्पादक वर्गों के बीच परिवर्तन के कारक को मुख्य रूप से स्वदेशी ग्रामीण समुदायों को शामिल किया जाता रहा है। लीमा के लघु औद्योगिक क्षेत्र के बीच से विद्रोहियों की तलाश करने के लिए पूँजी के साथ संघर्ष करना होगा और ऐसा करते हुआ एक हाथ पीठ के पीछे बँधा होगा। मज़दूर-किसान एकता के बारे में लेनिन ने जो कुछ कहा था यह उसकी प्रतिध्वनि है, लेकिन अब इस रूपरेखा का हिस्सा स्वदेशी समुदाय है।

क्या समाजवादी आंदोलन के लिए स्वदेशी ग्रामीण समुदाय सक्षम थे? 1920 के दशक में, जब मारियातेगी अपने चिंतन को विकसित कर रहे थे, ग्रामीण समुदायों के संबंध में प्रचलित बौद्धिक फ़ैशन इंडेनिज़्मो या इंडियननेस था, जिसका अर्थ एक सांस्कृतिक आंदोलन था जो कि अमेरिंडियन सांस्कृतिक रूपों को पुनर्जीवित करता था और उसका जश्न मानाता था, लेकिन उनकी परिवर्तनकारी क्षमता का पता लगाने में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं थी। इंडेनिज़्मो ने अमेरिंडियन को बदनाम किया और रोमांटिक रूप से उन्हें संस्कृति के निर्माता के रूप में देखा लेकिन इतिहास निर्माता के रूप में नहीं। मारियातेगी ने इस इतिहास को और अधिक जीवंत तरीक़े से व्याख्यायित किया, इसके लिए उन्होंने सामान्य स्वामित्व और सामान्य उत्पादन के इंका रूपों को समझने के लिए इतिहास का सहारा लिया साथ ही लातीफ़ुंदिस्तास के ख़िलाफ़ वर्तमान संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन के संसाधनों के रूप में भी देखा। मारियातेगी ने इंका समाजवाद के संदर्भ में लिखा, 'जब लोग पारंपरिक रूप से कम्युनिस्ट होते हैं', तब अपने समुदाय की व्यवस्था को भंग करने के लिए उन्हें छोटे ज़मींदारों में नहीं बदल दिया जाता है, बल्कि उनकी ज़मीन को बड़े ज़मींदारों को सौंप दिया जाता है। उन्होंने सेवेन इंटरप्रेटिव एस्सेज़ ऑन पेरुवियन रियलिटी में लिखा था, 'समाज को कृत्रिम रूप से परिवर्तित नहीं किया जा सकता है, फिर कम-से-कम एक कृषक समाज अपनी परंपराओं और इसके क़ानूनी संस्थानों से गहराई से जुड़ा हुआ होता है'। 'इसे एक अधिक जटिल और सहज प्रक्रिया के माध्यम से गठित किया जाना चाहिए' जिसमें लोकतांत्रिक प्रणाली में पुरानी परंपराएँ जीवित रहें।

मारियातेगी का एंडियन समाजवाद एक प्राचीन इंका सभ्यता के पूर्व-आधुनिक साम्यवाद की अतीत की बहाली नहीं था: 1928 में उन्होंने लिखा, 'यह स्पष्ट है कि इंका सभ्यता का जो कुछ बच गया हम उसके लिए अधिक चिंतित हैं बजाये इसके कि जो समाप्त हो गया। पेरू के अतीत से हमें उसी हद तक दिलचस्पी है जिस हद तक वह पेरू के वर्तमान की व्याख्या कर सकता है। रचनात्मक पीढ़ी अतीत को एक उत्पत्ति के रूप में सोचती है, एक योजना के रूप में कभी नहीं ।' दूसरे शब्दों में, अतीत साधन है, लक्ष्य नहीं है - यह हमें याद दिलाता है कि क्या संभव है, और इसके निशान हमें बताते हैं कि वर्तमान में औपनिवेशिक निजी संपत्ति संबंधों के ख़िलाफ़ लड़ाई में उस पुराने साम्यवाद के तत्वों का दोहन किया जा सकता है। जब मार्क्सवाद तीसरी दुनिया में आया तो इसे और अधिक सहज और सटीक होना पड़ा: इनके संदर्भों से सीखने के लिए और उन तरीक़ों को समझने के लिए जिनसे पूँजीवाद नये स्थानों पर आकार ग्रहण करता है और इतिहास को गति देने के लिए सामाजिक परिवर्तन के तरीक़ों की पड़ताल करता है।

एंडीज़ जैसी जगहों पर मार्क्सवाद की मृत्यु जल्द हो जाती अगर वह मज़दूरों और अन्य उत्पीड़ित लोगों की ठोस स्थितियों के साथ ही राष्ट्रीय आत्मनिर्णय की सामाजिक आकांक्षाओं को भी गंभीरता से नहीं लेता। साम्राज्यवाद के शिकंजे ने पेरू जैसे देशों की संप्रभुता को अपनी गिरफ़्त में ले लिया था, ऋण और युद्धपोतों से उनका दम घुट रहा था, लोगों को अपमान भरा जीवन जीने के लिए मजबूर किया जा रहा था। काम और जीवन की स्थितियों में सुधार करने, और पेरू जैसे देशों में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन का हिस्सा बनने का मतलब था मार्क्सवाद से प्रेरित आंदोलनों का विलय राष्ट्रीय मुक्ति के समाजवादी संघर्ष के साथ होना था। इसे उन आंदोलनों पर दबाव बनाना था जो पूँजीवाद के दायरे की भीतर हो रहा था - वे जो जीवन की स्थितियों को सुधारने की माँग कर रहे थे - साथ ही सरकार में अधिक प्रतिनिधित्व के लिए आंदोलनरत थे - जो उन व्यवस्थाओं में प्रवेश करना चाहते थे जो सामाज्यवादी नियंत्रण में थे। यही वे मुक्तिकामी माँगें थीं- पुराने मसीहाई विचारों के साथ-साथ क्रांतिकारी ट्रेड यूनियनों, अराजकतावाद और मार्क्सवाद से मिलकर बना - जो उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रवाद और समाजवाद की धाराओं को उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों में एक साथ लेकर आईं जिन्हें हम राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवाद कह रहे हैं।

यहाँ पर ठहरकर इस तथ्य को आत्मसात करना महत्वपूर्ण है जिसके बारे में मार्क्सवाद की दुनिया को देखने वाले अक्सर लोग समझ नहीं पाते हैं। औपनिवेशिक दुनिया में मार्क्सवादी बनने वाले बहुत से लोगों ने कभी मार्क्स को नहीं पढ़ा था। उन्होंने बहुत सारे साधारण पर्चे में मार्क्स के बारे में पढ़ा था और इसी क्रम में लेनिन से भी उनका सामना हुआ। उदाहरण के लिए, क्यूबा में कार्लोस बलीनो (1848-1926) जैसे श्रमिकों ने अपने साथियों का मार्क्स से परिचय करवाया। पुस्तकें बहुत महँगी थीं, और बहुत मुश्किल से मिल पाती थीं, सच्चाई यह भी थी कि इसमें सेंसरशिप की केंद्रीय भूमिका थी। बालीनो, चीन के ली डझाओ (1888-1927), दक्षिण अफ़्रीका के जोसी पामर (1903-1979), भारत के मुजफ़्फ़र अहमद (1889-1973), इराक़ के यूसुफ़ सलमान यूसुफ़ या फ़वाद (1901-1949), और पेरू के डोलोरेस कैकुआंगो (1881-

A.M.A.
TA
XX

1971) जैसे साधारण पृष्ठभूमि से आए लोगों की उन बौद्धिक परंपराओं तक पहुँच नहीं थी जिससे मार्क्स की आलोचना उभरी थी। उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके इसे सीखा, अक्सर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के एजेंटों (फ़हद ने अपनी मार्क्सवादी शिक्षा कॉमिन्टर्न के पिओट्र वासिली से ली थी) या यूएसएसआर में पूरब के मेहनतकशों के कम्युनिस्ट विश्वविद्यालय के अस्थायी वासियों से सीखा। वे बुर्जुआ परिवारों से नहीं आते थे और न ही अपने माता-पिता से गुज़ारा भत्ता पाते थे, न ही उन्हें मार्क्सवाद के विस्तृत अध्ययन का ही अवसर मिला था और न ही अपनी विद्वता से इन्होंने ये रास्ता तय किया था। वे कारख़ाने के फ़र्श और खेत के मैदानों से, औपनिवेशिक शासकों की जेलों से और राष्ट्रवादी संगठनों की झुंड से निकलकर मार्क्सवाद तक पहुँचे थे। साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के बारे में उन्होंने जो कुछ पढ़ा और अनुभव किया उससे अपना सिद्धांत विकसित किया और उस पर अमल किया। वे पढ़ते हैं ताकि उसे जीवन में उतार सकें और उससे वो सिद्धांत गढ़ सकें जिसका ज़मीनी स्तर पर क्रियान्वयन कर सकें, जो उनकी सामाजिक वास्तविकताओं को अनुरूप हों। माओत्से तुंग ने 'रेक्टिफ़ाई द पार्टीज़ स्टाइल ऑफ़ वर्क '(1942) में इसी दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित किया: 'पार्टी स्कूल में हमारे साथियों को मार्क्सवादी सिद्धांत को बेजान सिद्धांत नहीं मानना चाहिए। मार्क्सवादी सिद्धांत में माहारत हासिल करना और इसे लागू करना बेहद ज़रूरी है, इसपर माहारत हासिल करने का एकमात्र उद्देश्य होना चाहिए इसे लागू करना।'

ये वे पुरुष और महिलाएँ थीं जो लोगों के प्रति अपने स्नेह के माध्यम से उग्रवाद की तरफ़ आए थे, यह समझते हुए कि उपनिवेशवाद-विरोध को अपनी रूपरेखा का हिस्सा बनाना था, लेकिन इसके साथ ही सामाजिक क्रांति भी करनी थी। उपनिवेशवादियों को अस्वीकार करना और उपनिवेशवादियों के स्थान पर बुर्जुआ शासन स्थापित करना पर्याप्त नहीं होगा। दोनों को ही समाप्त होना था। यही कारण है कि इनमें से कई उग्रपंथियों ने बुर्जुआ राष्ट्रवादियों से थोड़ा वाम दिशा में हटकर अपनी पार्टियाँ बनाईं, लेकिन ये पार्टियियाँ इतनी अधिक वामपंथी भी नहीं थीं कि उपनिवेशवाद विरोधी कार्रवाइयों में एक साथ भाग न ले सकें। बालीनो और मैला ने 1925 में क्यूबा की कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया; जोस मार्टी (1853-1895) के लेखन से आकर्षित होकर बालीनो और मैला ने समाजवाद की अपनी समझ और आकांक्षा के साथ उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवाद का मिलान किया। इस विचार को औपनिवेशिक दुनिया में साझा किया गया। औपनिवेशिक दुनिया में अधिकांश मार्क्सवादी आंदोलन राष्ट्रीय बुर्जुआ के सवाल से जूझते रहे- या तो इसे आंशिक रूप से प्रगतिशील के रूप में देखा या सत्ता में आने पर स्वाभाविक प्रतिक्रियावादी के रूप में। पार्टियाँ इन लाइनों पर विभाजित हुईं, और कॉमिन्टर्न ने उनके साथ सुबह होने तक बहस की।

कॉमिन्टर्न ने लचीला रुख़ अख़्तियार करने की कोशिश की, लेकिन अपने शुरुआती वर्षों में दुनिया के सीमित ज्ञान की वजह से हमेशा उपयोगी बने रहने के लिए इसने बहुत अधिक हठधर्मिता अपना लिया। 1920 के दशक के अंत तक कॉमिन्टर्न ने संयुक्त राज्य के दक्षिणी क्षेत्र में एक ब्लैक बेल्ट रिपब्लिक, दक्षिण अफ़्रीका में एक मूलनिवासी गणराज्य और दक्षिण अमेरिका के एंडियन क्षेत्र के साथ-साथ एक भारतीय गणराज्य के निर्माण का प्रस्ताव रखा। मॉस्को में बैठकर ऐसा प्रतीत

हुआ कि राष्ट्रीयताओं के सिद्धांत को आसानी से इन सुदूर देशों तक पहुँचाया जा सकता है। जून 1929 में ब्यूनस आयर्स में आयोजित पहले लैटिन अमेरिकी कम्युनिस्ट सम्मेलन में दक्षिण अमेरिका के लिए इस सिद्धांत पर बहस की गई थी। कॉमिंटर्न द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण का मारियातेगी और उनके सहयोगियों द्वारा विरोध किया गया जिसके बाद तीखी बहस हुई। मारियातेगी ने 'प्रॉबलम ऑफ़ रेस इन लैटिन अमेरिका', जो उन्होंने 1929 के सम्मेलन के लिए तैयार किया था, में लिखा, 'इंडियन नस्ल के एक स्वायत्त राज्य का निर्माण इंडियन सर्वहारा वर्ग की तानाशाही की ओर नहीं ले जाएगा, वर्गों के बिना एक इंडियन राज्य का गठन भी किसी काम का नहीं होगा।' जो कुछ बनाया जाएगा वह 'एक इंडियन बुर्जुआ राज्य होगा जो अन्य बुर्जुआ वर्ग के आंतरिक और बाहरी विरोधाभास से लैस होगा।' पसंदीदा विकल्प होगा 'शोषित स्वदेशी जनता का क्रांतिकारी वर्गीय आंदोलन', जो उनके लिए 'उनके नस्लों की सच्ची मुक्ति का मार्ग खोलने' का एकमात्र तरीक़ा था'। लक्ष्यों और रणनीति पर बहस इतनी तीखी हो गई कि यह एकमात्र लैटिन अमेरिकी कम्युनिस्ट सम्मेलन साबित हुआ। मारियातेगी ने टेंपेस्ट इन द एंडेस (1927) की प्रस्तावना में लुइस वालकारेल को उद्धृत किया, 'इंडियन सर्वहारा वर्ग लेनिन की प्रतीक्षा कर रहा है'। न तो वालकारेल और न ही मारियातेगी का सीधा मतलब लेनिन से था, लेकिन उसका आशय एक सिद्धांत से था जो आंदोलनों से उभर सकता हो जो अतीत और वर्तमान की कठोर संरचनाओं के ख़िलाफ़ नेतृत्व कर सकता हो।

यह सबक़ हमेशा सीखा नहीं गया। लेकिन यह अब यह हमारे लिए सबक़ है।

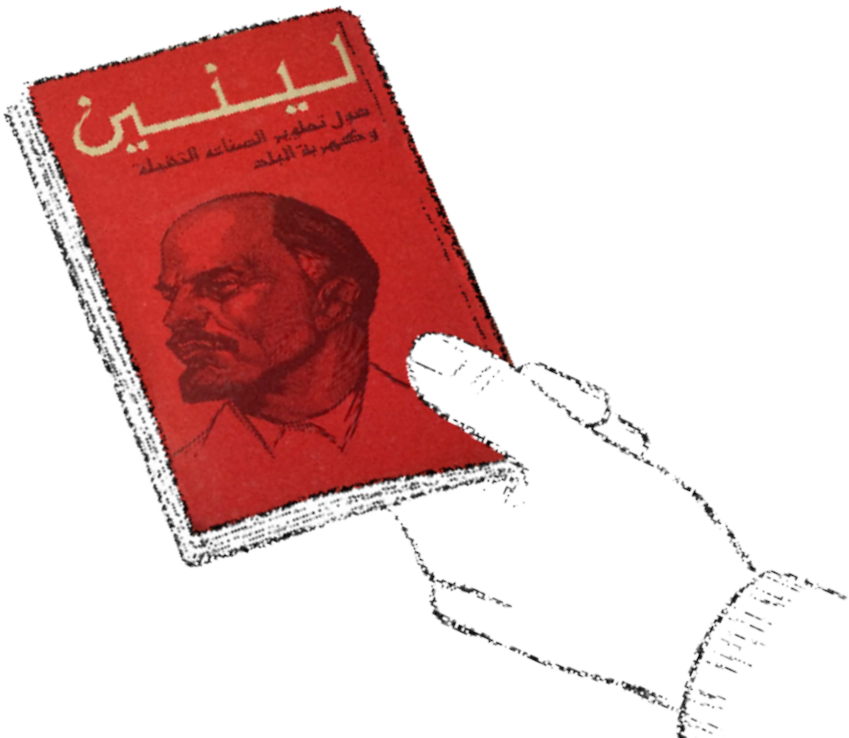

सामाजिक विकास को कैसे आगे बढ़ाएँ?

उपनिवेशों और अर्ध-उपनिवेशों के क्रांतिकारियों को उत्पादक शक्तियों के विकास की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा। कुछ ने औपनिवेशिक शक्तियों के हस्तक्षेप को अपने सामाजिक विकास के लिए प्रगतिशील क़दम के रूप में देखा, क्योंकि इन यूरोपीय औपनिवेशिक शक्तियों ने आम तौर पर औपनिवेशिक समाजों में सबसे ख़राब तत्वों के साथ मिलकर सत्ता को नियंत्रित किया: अभिजात वर्ग, ज़मींदार, पादरी और पारंपरिक बुद्धिजीवी। औपनिवेशिक नीति ने अक्सर सामाजिक विकास पर दबाव बनाए रखा, पदानुक्रम के पुराने रूपों को निष्क्रिय किया और परंपरा के नाम पर नये का निर्माण किया। इसके साथ ही, औपनिवेशिक नीति ने समाज को कंगाल बनाया; सामाजिक धन को लूटा और इसे उत्तरी अटलांटिक देशों में भेज दिया; और उन क्षेत्रों को सामाजिक तौर पर रेगिस्तान बना दिया गया जो कभी समृद्ध सांस्कृतिक गतिशीलता और सामाजिक विकास की क्षमता रखते थे।

बुर्जुआ राष्ट्रवादियों ने समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा को नकार कर या इसका महिमामंडन करके इसका सामना किया, चाहे पूर्व-औपनिवेशिक रूप हों या उपनिवेशवाद के दौरान गढ़े गए रूप। इस तरह के पुनरुत्थानवाद ने कीचड़ में और इज़ाफ़ा ही किया, औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था और उसके समाज के विकास का गला घोंटा। किसानों और मज़दूरों के विद्रोह ने बुर्जुआ राष्ट्रवादियों को यह समझने के लिए बाध्य किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता के लक्ष्य को केंद्रीय महत्व मिलना चाहिए, इसे सामाजिक क्रांति और उस आर्थिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों के ख़िलाफ़ क्रांति से अलग नहीं किया जा सकता जिसे औपनिवेशिक शक्तियों ने थोपा था। इन शक्तियों ने भूस्वामी अभिजात वर्ग और पूँजीपति वर्ग के साथ मिलकर समाज का दम घोंटने का काम किया।

मिस्र के समाजवादी सलामा मूसा (1887-1958) उपनिवेशों में प्रारंभिक क्रांतिकारी चेतना के प्रतीक हैं। मूसा अपने समाज के पदानुक्रमों और अपने समय की स्पष्ट व्यर्थता से परेशान हो चुके थे। यह समाजवाद ही था- इसके लिए उन्होंने अरबी शब्द इश्तराकिया का इस्तेमाल किया- जिसमें उन्हें अपने समय का उत्तर मिला। मूसा को प्रगति में दो बाधाएँ दिखाई दीं: औपनिवेशिक शक्तियाँ (मुख्य रूप से ब्रिटेन) और परंपरावाद। दोनों ने मिस्र के समाज को गतिरोध से बाहर निकलने से रोका, शिक्षा व्यवस्था चरमरा गई थी, भुखमरी चारों ओर व्याप्त थी, धार्मिक विचार के स्वांग को मिस्र की प्रामाणिक विचारधारा का दर्जा हासिल था। मूसा इस बात से सहमत नहीं थे कि नहदा, अरबों का प्रबोद्धन इसके लिए पर्याप्त होगा,

क्योंकि ऐसा नहीं लगता था कि यह परंपरावाद और उपनिवेशवाद के भारी बोझ को अपने ऊपर से उठाकर फेंकने में सक्षम है। मूसा ने जब अल-यौमवा अल-ग़द (1928) में लिखा, 'हालाँकि सूरज पूरब में उगता है, रौशनी पश्चिम से आती है!' तो उससे उनका क्या मतलब था? क्या उसका मतलब यह था कि पश्चिम तर्क का स्रोत था? ऐसा नहीं था कि तर्क पश्चिम से आया था, लेकिन यह कि पश्चिम - संसाधनों की चोरी और इसकी क्षमता के कारण सामाजिक रूप से विकसित होने के साथ- ने विकास को विचार (मार्क्सवाद, फ़ैबियन समाजवाद) में प्रस्तुत किया जिसे मिस्र जैसी जगहों पर लागू किया जाना चाहिए। यह आवश्यक था कि ख़ुद को न तो प्रकृतज्ञानवाद (नेटिविज़्म) की खोह में छुपा लिया जाए और न ही औपनिवेशिक आक़ाओं की विचारधारा को अपना लिया जाए। बल्कि इसका सार था एक समाज की समालोचना को विकसित करने के लिए श्रेष्ठ तर्कों के द्वारा रूपरेखा और अवधारणाओं को खोजना। मूसा ने आवर ड्यूटी एंड टास्क ऑफ़ फ़ौरेन कंट्रीज़ (1930) के साथ-साथ गांधी एंड द इंडियन रिवोल्यूशन (1934) तथा मिस्र: अ प्लेस वेयर सिविलाइज़ेशन बिगेन (1935) में इसे ही खोजने का प्रयास किया।

'पिछड़ेपन' (तख़ल्लुफ़) के विचार को आसानी से ख़ारिज नहीं किया जा सकता। क्रांतिकारियों के लिए, उपनिवेशों की बदहाली के लिए पश्चिमी विचारों की आलोचना करना अपर्याप्त था; उनका काम था औपनिवेशिक स्थिति की कठोर वास्तविकता से बाहर निकलने के लिए एक सिद्धांत विकसित करना, जिसका व्यावहारिक रूप से क्रियान्वयन किया जा सके। हसन हमदान (1936-1987), जिन्हें महदी अमेल के नाम से भी जाना जाता है, ने सीधे तौर पर इस समस्या का सामना किया। लेबनानी कम्युनिस्ट पार्टी के अख़बार अल-तारिक़ में 1968 में प्रकाशित 'कॉलोनियलिज़्म एंड बैकवर्डनेस' में महदी अमेल ने लिखा: 'यदि आप वास्तव में चाहते हैं कि रौशनी को देखने के लिए हमारा ख़ुद का मार्क्सवादी विचार हो, और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से वास्तविकता को देखने में सक्षम हों, तो हमें मार्क्सवादी विचार के साथ इसकी शुरुआत नहीं करनी चाहिए और इसे अपनी वास्तविकता पर लागू नहीं करना चाहिए, बल्कि इसे हमारी वास्तविकता के बीच से एक बुनियादी आंदोलन की तरह शुरू करना चाहिए।' यदि कोई समाज के ऐतिहासिक विकास और अपने स्वयं के सांस्कृतिक संसाधनों के साथ विश्लेषण शुरू करता है 'तभी हमारा विचार सही रूप में मार्क्सवादी हो सकता है।' औपनिवेशिक स्थिति की वास्तविकता का पता लगाना था और उस स्थिति को ध्यान में रखने के लिए मार्क्सवाद को विस्तृत किया जाना था।

महदी अमल ने लिखा अरबों ने 'पिछड़े' होने के कलंक में सुराख़ कर दिया। यह ऐसा था मानो वे असफल होने के अलावा कुछ भी करने में सक्षम न हों। लेकिन अरबों का विनाश उनकी संस्कृति के किसी भी आवश्यक पहलू के कारण नहीं था,

बल्कि उनके साथ जो कुछ घटित हुआ उसकी वजह से था। सौ साल के औपनिवेशिक शासन ने समाज के साथ-साथ राजनीति और अर्थशास्त्र की संरचना को बदल दिया था। पुराने अरब में जो कुछ उल्लेखनीय था उसे हाशिये पर धकेल दिया गया था या एक नयी दुनिया द्वारा अवशोषित कर लिया गया था, जहाँ वे केवल उन शक्तियों के प्रतिनिधि थे जो कहीं और रहती थीं। जो नये अभिजात वर्ग उभरे वे बाहरी ताक़तों का प्रतिनिधित्व करते हैं, अपनी आबादी का नहीं। जब पेरिस छींकता था, तो उन्हें ज़ुकाम हो जाता था। संयुक्त राज्य अमेरिका का राजदूत निर्वाचित अधिकारियों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण हो गया था। महदी अमल ने सुझाव दिया कि जिस अनुभव को 'पिछड़ेपन' की संज्ञा दी गई थी, उसमें अरबों की कोई ग़लती नहीं थी; ऐसा उन तरीक़ों की वजह से हुआ जिसने उनके जीवन को आकार दिया। उन्होंने तर्क दिया कि मार्क्सवाद को इस विचार को गंभीरता से लेना चाहिए था।

गिनी और केप वर्डे की स्वतंत्रता के लिए अफ़्रीकी पार्टी (पीएआईजीसी) के एमिलकर कैबरल ने राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक प्रतिरोध के रूपों के अंत:संबंध को समझा और समझाया। उन्होंने 1969 में PAIGC के कैडरों की एक संगोष्ठी को कहा, 'हमें यह याद रखना होगा कि पेट भरने के लिए, स्वस्थ राजनीति के लिए, और युद्ध लड़ने के लिए यह पर्याप्त नहीं है'। सांस्कृतिक प्रतिरोध के लिए उन्होंने ये लक्ष्य निर्धारित किया: 'जबकि हम औपनिवेशिक संस्कृति तथा अपनी ही संस्कृति के नकारात्मक पहलुओं का क़र्ज़ चुका रहे हैं, हमारी यह भावना होनी चाहिए कि हमें अपनी परंपराओं के आधार पर एक नयी संस्कृति भी बनानी होगी, लेकिन हमें उन सभी चीज़ों का सम्मान करना होगा जिसे दुनिया ने लोगों की सेवा करने के लिए हासिल किया है।' उपनिवेशवाद के अवशेष से बाहर नयी संस्कृति बनाने की इस परियोजना के हिस्से के रूप में राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवादी परंपरा में विविध और समृद्ध अनुभव विकसित किए गए थे। क्यूबा से लेकर इंडोनेशिया तक संस्कृति का संगठन - दोनों राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवाद के निर्माण की कुंजी हैं - औपनिवेशिक और साम्राज्यवादी वर्चस्व से आगे का मार्ग निर्मित करने और प्रशस्त करने में मदद के लिए।

लगभग इसी समय पाकिस्तानी विद्वान हमज़ा अलवी (1921-2003) ने उत्पादन के औपनिवेशिक साधन के बारे में अपना सिद्धांत प्रस्तुत किया; मिस्र के मार्क्सवादी समीर अमीन (1931-2018) ने उत्पादन के सहायक साधन के विषय में काम किया; और भारत में उत्पादन के साधनों के विषय में बहस हो रही थी। इन बुद्धिजीवियों द्वारा साझा की गई बुनियादी समझ यह थी कि साम्राज्यवादी व्यवस्था उपनिवेशों में उत्पादक शक्तियों को विकसित नहीं होने देंगी। महदी अमल ने पिछड़ेपन को सांस्कृतिक दृष्टि से नहीं देखा, बल्कि वैश्विक व्यवस्था की संरचना की दृष्टि से देखा: दक्षिण कच्चा माल और

बाज़ार उपलब्ध कराएगा, जबकि उत्तर तैयार माल का उत्पादन करेगा और सामाजिक धन का बड़ा हिस्सा अर्जित करेगा। 'पिछड़ेपन' की भावना इस व्यवस्था को प्रतिबिंबित करता है। दक्षिणी गोलार्ध में राजनीतिक अव्यवस्था भी इस आर्थिक अधीनता से संबंधित थी। इन सभी विचारकों ने- अधिक या कम सफलता के साथ- इसके बारे में सिद्धांत प्रस्तुत करने की कोशिश की कि आख़िर ये हुआ कैसे। सांस्कृतिक अधीनता पर ध्यान केंद्रित करना पर्याप्त नहीं था; एक सिद्धांत और उसके क्रियान्वयन की आवश्यकता थी जो राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन को आगे लेकर जाए।

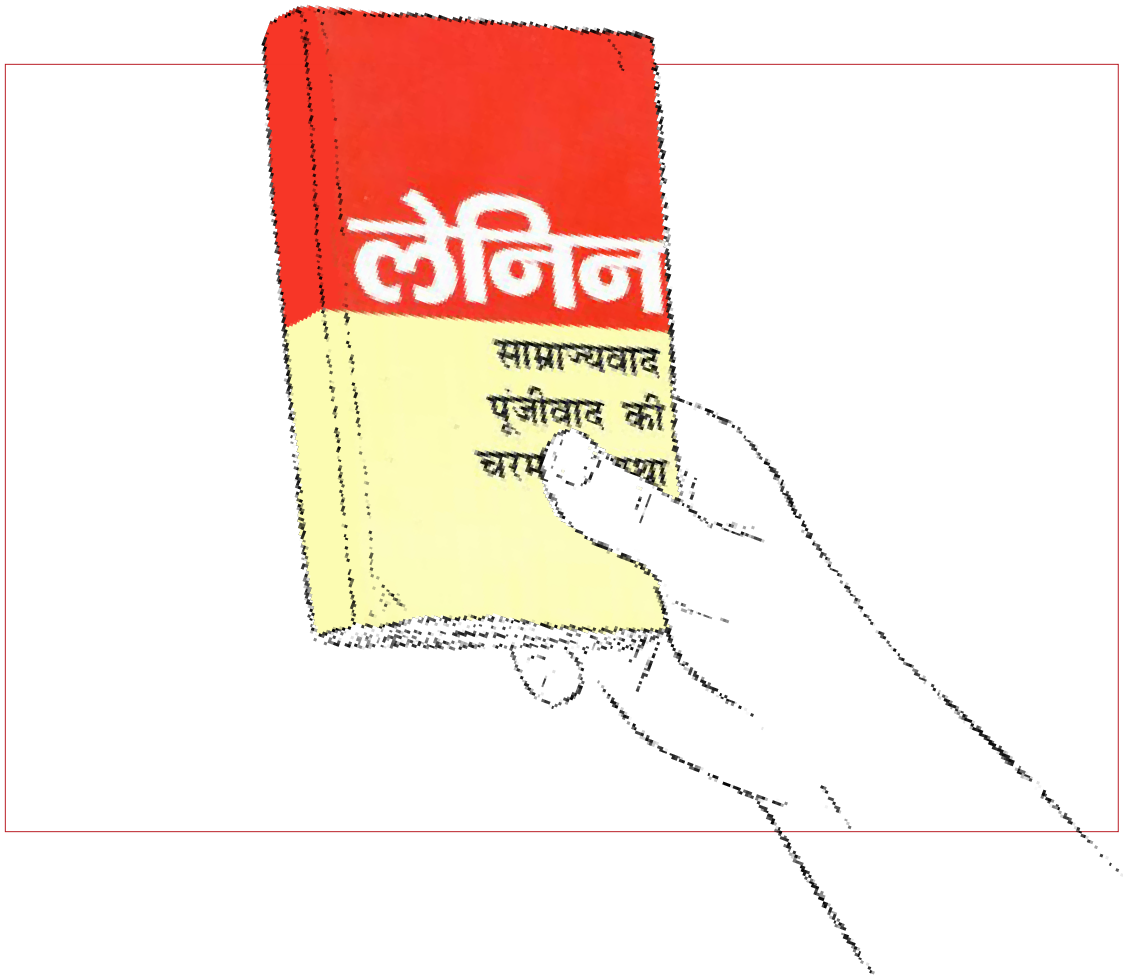
लेनिन
साम्राज्यवाद
पूंजीवाद की

तीन महादेशों का मार्क्सवाद

1948 में, संयुक्त राष्ट्र ने लैटिन अमेरिका के लिए एक विशेष एजेंसी, लैटिन अमेरिका के आर्थिक आयोग (CEPAL) की स्थापना की, जिसका काम अगले दो दशकों के दौरान असमान विकास के 'निर्भरता स्कूल' का शुभारंभ करना था। CEPAL के दृष्टिकोण ने लैटिन अमेरिका के विकास के लिए संरचनात्मक बाधाओं केपलिज़मो की ओर इशारा किया। CEPAL के संस्थापक निदेशक राउल प्रीबिश ने तर्क दिया कि लैटिन अमेरिका के देश पुरानी औपनिवेशिक शक्तियों पर निर्भरता के चक्र में फँस गए थे। प्राथमिक वस्तुओं के निर्माता और पूँजी के लेनदारों के रूप में लैटिन अमेरिकी देश अधीनस्थ स्थिति में आ गए हैं। लैटिन अमेरिकी देशों और पुरानी औपनिवेशिक शक्तियों के बीच व्यापार की शर्तों में पुरानी औपनिवेशिक शक्तियों को लाभ मिला, क्योंकि प्राथमिक वस्तुओं की क़ीमतें - जैसे कि बमुश्किल प्रसंस्कृत भोजन - निर्मित वस्तुओं और सेवाओं की क़ीमतों की तुलना में तेज़ी से बढ़ीं। न तो प्रीबिश मार्क्सवादी थे और न ही उनकी टीम के अधिकांश सदस्य, लेकिन इसमें कोई शक नहीं कि निर्भरता परंपरा ने मार्क्सवादियों की एक पीढ़ी को प्रभावित किया और राष्ट्रवादियों को पूरे लैटिन अमेरिका में फैला दिया। 1948 में प्रीबिश द्वारा जारी CEPAL के महत्वपूर्ण घोषणापत्र के दो दशक बाद राय मौरो मरीनी, थियोटोनियो डोस संटोस तथा आंद्रे गुंदेर फ्रैंक जैसे मार्क्सवादियों की युवा पीढ़ी ने निर्भरता सिद्धांत विकसित किया, राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवाद के विकास में इसे एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र माना जाता है।

इन सिद्धांतकारों ने पुरानी स्थिति के ख़िलाफ़ तर्क दिया कि लैटिन अमेरिका सामंतवाद या अर्ध-सामंतवाद में धँसा था - और इस तरह आधुनिकता की ओर बढ़ने के लिए इसे पूँजीवादी झटके की ज़रूरत थी। केपलिज़्मो से प्रेरित डिपेंडेंसिया (निर्भरता) स्कूल का यह विचार था कि विश्व पूँजीवादी व्यवस्था ने लैटिन अमेरिका को बीसवीं शताब्दी में नहीं बल्कि औपनिवेशीकरण की शुरुआती अवधी में ही उसे एक अधीनस्थ स्थिति में लाकर अपने दायरे में समाहित कर लिया था। निर्भरता स्कूल के साथ-साथ समीर अमीन जैसे लोगों ने अपने अध्ययन के द्वारा तर्क दिया कि पूँजीवाद ने पुराने औपनिवेशिक केंद्रों और पुराने उपनिवेशवादी परिधि के बीच की दुनिया को दो ध्रुवों में बाँट दिया है। अमीन ने 1956 में तर्क दिया कि विश्व स्तर पर पूँजी के संचय की प्रक्रिया ने परिधि के एजेंडे को आकार दिया और परिधीय देशों को केंद्र की ज़रूरतों और हितों के अनुकूल होने के लिए मजबूर किया था। अमीन इसे 'एकतरफ़ा समायोजन' कहते हैं। इसका अर्थ था कि नये स्वतंत्र देशों के लिए नीतिगत ढाँचा पहले से ही पूँजीवादी वैश्वीकरण पर निर्भरता के लिए विवश था। पूँजीवादी

वैश्वीकरण से और विकास के भ्रम से बाहर निकलने की संभावना एकतरफ़ा समायोजन के शिकंजे से पूरी तरह अलग हुए बिना लगभग नामुमकिन था, एक ऐसा विराम जिसे अमीन ने 'डीलिंकिंग' (अलग कर देना) कहा था।

यही वह प्रवृत्ति थी- केपलिज़्मो से लेकर अमीन के डीलिंकिंग सिद्धांत तक - जिसने क्यूबा (1959) से लेकर बुर्किना फासो (1983) तक राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों के लिए और बोलीविया और वेनेज़ुएला जैसे देशों में हमारे समय में क्रांतिकारी प्रक्रियाओं के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान किया। 1966 में, क्यूबा सरकार ने ट्राइकॉन्टिनेंटल कॉन्फ्रेंस के लिए कई क्रांतिकारी देशों और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की मेज़बानी की। सम्मेलन में मुख्य रूप से राजनीति के इर्द-गिर्द चर्चा हुई; वियतनाम से लेकर गिनी बिसाऊ तक हो रहे सशस्त्र संघर्षों के समर्थन से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद द्वारा ग़रीबी के पुनरुत्पादन की निंदा तक कई तरह के भाषण दिए गए। मार्क्सवादी सिद्धांत या विश्व आर्थिक व्यवस्था पर बहुत कम चर्चा हुई। इसे कुछ ख़ास अहमियत नहीं दी गई। राष्ट्रीय मुक्ति बलों के लिए यह स्पष्ट था कि मार्क्सवाद उनकी कसौटी था और निर्भरता सिद्धांत के विभिन्न रूप उनकी साझा रूपरेखा थी। 1960 के दशक के फ़िदेल कास्त्रो के भाषणों से ज़ाहिर होता है केपलिज़्मो से लेकर डीलिंकिंग तक, निर्भरता के सिद्धांत से लेकर एकतरफ़ा समायोजन को तोड़ने तक, पर उनका कितना भरोसा था। अविकसितता के विकास की इस व्यापक समझ ने अलग-अलग वर्ग विन्यास वाले देशों के बीच गुटनिरपेक्ष आंदोलन (1961) जैसे संस्थानों और मंचों का निर्माण किया। दृष्टिकोण की यह एकता 1974 के संयुक्त राष्ट्र महासभा के नये अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में स्पष्ट है, जिसने व्यापार, विकास और वित्त में असमान विनिमय के बाहर विश्व संबंधों को फिर से व्यवस्थित करने का संकल्प लिया।

ऋण जैसे वित्त के साम्राज्यवाद को तोड़ना मार्क्सवादी वैश्विक दृष्टिकोण के लिए केंद्रीय महत्व का रहा है। 1980 के दशक की शुरुआत में ऋण संकट ने अपने स्वयं के एजेंडों को चलाने की नये स्वतंत्र राज्यों की क्षमता को कुचल दिया। कास्त्रो अक्सर कहते थे, जैसा कि उन्होंने 1985 में वैश्विक ऋण के ख़िलाफ़ एक विश्व आंदोलन का उद्घाटन करते समय भी कहा कि एक नयी अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए जो 'अमीर और ग़रीब देशों के बीच असमान संबंधों को ख़त्म करने और तीसरी दुनिया के अपनी नियती चुनने के अपरिहार्य अधिकार को सुनिश्चित करे, जो साम्राज्यवादी हस्तक्षेप तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के शोषणकारी उपायों से मुक्त हो'।

अन्य राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवादियों की तरह कास्त्रो को भी दक्षिणी गोलार्ध के पूँजीपति और कुलीन वर्गों के बारे में कोई भ्रम नहीं था - वे लोग जो वर्गीय आधार पर साम्राज्यवाद के साथ हैं उनके ख़िलाफ़ नहीं। राष्ट्रीय मुक्ति उसे नहीं माना जा सकता जिसका उद्देश्य हो बुर्जुआ और कुलीन वर्ग के हाथों में सत्ता सौंप देना, बल्कि उसे कहा जाना चाहिए जो बुर्जुआ राज्य के परे जाकर क्रांतिकारी ताक़तों को गति दे। यह देखते हुए कि परिधि के देशों में सबसे क्रांतिकारी वर्गों के लोग वे थे जो सबसे अधिक अपवर्जित थे, सामाजिक संबंधों के पुनर्निर्माण के लिए राजनीतिक आधार प्रदान करने के बाद उन्हें वापस खेतों और कारख़ानों में भेजना इतिहास के साथ विश्वासघात होगा।

अतीत के विरुद्ध, भविष्य की ओर

निर्भरता सिद्धांत और असमान विनिमय के इर्द-गिर्द होने वाली बहस सेंटियागो (चिली) से नयी दिल्ली (भारत) तक फैल गई। दुनिया के इस हिस्से में मार्क्सवादियों के लिए महत्वपूर्ण था - परिधि, निर्भरता सिद्धांत के भूगोल के अनुसार - विश्व स्तर पर संचय की प्रक्रिया के साथ ही (जैसा कि अमीन की पुस्तक का शीर्षक है), उन देशों के भीतर के वर्ग संबंध का बारीकी से अध्ययन करना, जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय शक्ति संबंधों की दिशा बदल दी थी। रचनात्मक मार्क्सवाद समय की माँग थी, लेकिन राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग पर संदेह करना भी बेहद ज़रूरी था, जो अक्सर महानगरीय पूँजीपति वर्ग के हक़ में अपने स्वयं के श्रमिकों का शोषण करने के लिए अपनी परिधीय स्थिति का उपयोग करता था। यूएसएसआर, पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ़ चाइना, सोशलिस्ट फ़ेडरल रिपब्लिक ऑफ़ यूगोस्लाविया और पीपुल्स सोशलिस्ट रिपब्लिक ऑफ़ अलबानिया के बीच इंटरनेशनल कम्युनिज़्म में असहमति साफ़ तौर पर उभरकर आई; पूरे दक्षिणी गोलार्ध के देशों में वाम आंदोलनों पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

उदाहरण के लिए, भारत में 1951 से 1964 के बीच कम्युनिस्ट आंदोलन के भीतर जो बहसें हुई वह बहुत तीखी तथा विद्वतापर्ण थी। एक वर्ग (जिसकी संख्या कम थी) ने तर्क दिया कि भारतीय बुर्जुआ उस समय अपने परिधीय स्थिति के कारण भारतीय मज़दूर किसान वर्ग का सहयोगी हो सकता था, और यूएसएसआर विश्व क्रांति का केंद्र था। एक अन्य धारा (कम्युनिस्ट आंदोलन का अधिकांश हिस्सा) का विचार था कि भारतीय बुर्जुआ मज़दूरों और किसानों के सहयोगी नहीं था, और सोवियत संघ एक बिरादराना देश था, क्रांतिकारी सिद्धांत तथा उसके क्रियान्वयन का स्रोत नहीं था। इस बहस ने 1964 में भारतीय कम्युनिस्ट आंदोलन को विभाजित कर दिया, अल्पमत के विचार का प्रतिनिधित्व भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) कर रहा था, जबकि बहुमत के विचार का प्रतिनिधित्व करने वाला समूह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) या सीपीआई(एम) कहलाया।

सीपीआई(एम) के मुख्य सिद्धांतकारों में से एक ईएमएस नंबूदरीपाद (1909-1998) थे। ईएमएस, जिस नाम से वो लोकप्रिय थे, भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अतिवादियों में से और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं में से एक थे, जो उपनिवेशवाद विरोधी स्वतंत्रता मंच, कांग्रेस पार्टी, का एक समाजवादी घटक था। आगे चलकर जो क्षेत्र केरल राज्य बना वहाँ जन्मे ईएमएस तथा राज्य की कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्य सदस्य भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए। 1957 में, ईएमएस के नेतृत्व में केरल में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को राज्य चुनावों में जीत मिली। केरल में बुनियादी तौर पर संरचनात्मक परिवर्तन किए गए; जिसकी वजह से बुर्जुआ वर्ग की नाराज़गी मोल लेना पड़ा, और उसके मुख्य राजनीतिक दल, कांग्रेस ने - सीआईए की मिलीभगत से - 1959 में ईएमएस की सरकार को सत्ता से बेदख़ल कर दिया। अपने अभिनव और कठिन परिश्रम की वजह से कम्युनिस्ट 1967-69 में केरल में फिर से सत्ता में वापस आए और ईएमएस मुख्यमंत्री बने। ईएमएस ने 1978 से 1992 तक पार्टी के महासचिव के रूप में चौदह वर्षों तक सीपीआई(एम) का नेतृत्व किया। इस

अवधि में उन्होंने भारतीय इतिहास और राजनीति का अध्ययन तथा मौलिक लेखन किया। वह यह तर्क देते हैं कि भारतीय क्रांति के लिए आवश्यक अवधारणाओं और गतिकी को बाहर लाने के लिए मार्क्सवादी दृष्टिकोण से भारत की सैद्धांतिक परंपराओं और इतिहास से भिड़ना आवश्यक था। दूसरे शब्दों में, ऐतिहासिक भौतिकवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद को बिना गंभीर फेर बदल किए सीधे यूरोपीय परंपरा जैसे जस का तस नहीं अपनाया जाना चाहिए।

1939 में मालाबार टेनेंसी इन्क्वायरी कमेटी की रिपोर्ट के मिनट पर अपना विरोध दर्ज कराने से लेकर 1970 के दशक में जाति और वर्ग पर लिखे लेखों तक, ईएमएस ने भारत के इतिहास और समाज की व्याख्या करने के लिए मार्क्सवादी पद्धति की खोज की। ऐतिहासिक भौतिकवाद के लिए, मार्क्स द्वारा निर्धारित ऐतिहासिक आख्यान कि समाज दो चरणों से गुज़रा: दासता से सामंतवाद तक, और फिर सामंतवाद से पूँजीवाद तक। ऐसा पूँजीवाद से समाजवाद के भविष्य के चरण की प्रत्याशा में कहा गया था। भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। जैसा कि उन्होंने द इंडियन नेशनल क्रेसचन में ईएमएस ने लिखा है:

> इस दो-चरण वाले परिवर्तन के विपरीत - दासता से सामंतवाद, और फिर सामंतवाद से पूँजीवाद, भारत उसी पुरानी व्यवस्था से जकड़ा हुआ है जिसमें बहुसंख्यक लोग वंचित-दलित और पिछड़ी जातियों के थे। मार्क्स ने भारत का 'अपरिवर्तनीय' समाज कहा उसका सार यही था, जहाँ उच्च स्तर पर होने वाले युद्धों और विप्लव से गाँव अछूता रहता था।

जाति समाज और ब्राह्मणवाद के आधिपत्य का भारतीय समाज पर सबसे हानिकारक प्रभाव पड़ा। जाति व्यवस्था ने न केवल उत्पीड़ित जनता को दास बनाकर रखा; ब्राह्मणवाद के वैचारिक आधिपत्य के परिणामस्वरूप विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ-साथ अंततः उत्पादक शक्तियाँ भी निष्क्रियता का शिकार हो गईं। इस प्रक्रिया ने भारत को कमज़ोर कर दिया, जिसने यूरोपीय उपनिवेशवाद के लिए दरवाज़ा खोल दिया। जैसा कि ईएमएस ने 1989 में कहा था, 'ब्राह्मणवादी शक्तियों के हाथों वंचित जातियों की पराजय, आदर्शवाद द्वारा भौतिकवाद की पराजय थी, इससे भारत की सभ्यता और संस्कृति के पतन की शुरुआत होती है जिसका अंत राष्ट्रीय स्वतंत्रता की क्षति के रूप में होता है।'

आठवीं शताब्दी में आदि शंकराचार्य के समय से भारतीय इतिहास का ठहराव जाति आधारित सामंती समाज में व्याप्त था। यह जाति व्यवस्था, अपने धार्मिक औचित्य के साथ, अपने अंतर्विरोधों को समाहित करने में सक्षम था। इसका मतलब यह था कि भारतीय इतिहास में विद्रोह द्वारा जाति व्यवस्था को चुनौती दी गई थी, लेकिन इनमें से कोई भी विद्रोह जाति पर हमला करके इसके पदानुक्रम को तोड़ने में विधिवत रूप से सफल नहीं हुआ।

न तो ब्रिटिश उपनिवेशवाद और न ही उत्तर-औपनिवेशिक राज्य में भारतीय बुर्जुआ वर्ग की जाति को नष्ट करने की कोई वास्तविक इच्छा थी। सामंती ज़मींदारों के पूँजीवादी ज़मींदारों में रूपांतरण और पट्टे पर खेती करने वालों के कृषि सर्वहारा में रूपांतरण से सामंतवाद की कमर नहीं टूटी। बस इतना परिवर्तन हुआ कि केवल जाति आधारित सामंती व्यवस्था पर

पूँजीवादी सामाजिक संबंधों की परत चढ़ गई। ईएमएस ने लिखा, 'भारत में, पूर्व-पूँजीवादी व्यवस्था के शोषण के कई रूप अब भी जारी हैं, कुछ मूल और कुछ परिवर्तित रूपों में। इनके साथ-साथ पूँजीवादी विकास के परिणामस्वरूप शोषण की एक नयी प्रणाली भी मौजूद है'। पुराने सामंती संबंधों की वजह से कृषि संबंधी सर्वहारा वर्ग और भी ग़रीब होते चले गए: खेतों में काम करने वाले ग़रीब और ग़रीब हो गए क्योंकि पुराने सामंती रीति-रिवाजों ने ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि कृषि से होने वाला मुनाफ़ा ज़मींदारों को जाता रहा और बोझ खेत पर काम करने वालों के हिस्से आता रहा, जिसके नतीजे में खेतों में काम करने वाले लोग और ग़रीब होते चले गए। कृषि को आधुनिक बनाने के लिए मुनाफ़े का बहुत थोड़ा हिस्सा निवेश किया जाता था।

उपनिवेशवाद और राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग द्वारा सृजित पूर्व-पूँजीवादी सामाजिक संरचनाओं को स्वतंत्र भारत के जन आंदोलनों ने व्यवस्थित रूप से कमज़ोर कर दिया। ईएमएस ने भारतीय समाज के भीतर की संभावनाओं को खोजा, सामाजिक प्रगति की संभावनाओं तथा अवरोधों का पता लगाया। भारतीय समाज में जाति के विशेष उत्पीड़न और धार्मिक अधिनायकवाद का संज्ञान लेते हुए ईएमएस ने इस आधार पर लोगों को संगठित करके इसके ख़िलाफ़ लड़ाईयाँ लड़ीं। जाति को आधार बनाकर जाति उत्पीड़न से नहीं लड़ा जा सकता है; इसके बजाय, एकीकृत वर्ग संगठनों के माध्यम से लोगों को संगठित करके ही जाति उत्पीड़न से लड़ा जा सकता है, जो संगठन भारतीय समाज में जाति की विशेष भूमिका को समझता हो और उसपर ज़ोर देता हो। जैसा कि उन्होंने अपने निबंध 'वन्स अगेन ऑन कास्ट्स एंड क्लासेस' (1981) में इसके बारे में लिखा:

> 'हमें तब भी दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा और अभी भी दो मोर्चों पर लड़ना है। एक तरफ वे लोग हमारे ख़िलाफ़ मज़बूती से खड़े हैं, जो कथित तौर पर 'राष्ट्रवाद और समाजवाद के सिद्धांतों से हटने' के लिए हमें बदनाम करते हैं, क्योंकि हम उत्पीड़ित जातियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों के 'सांप्रदायिक' हितों की हिमायत करते हैं। दूसरी ओर, वे लोग हैं, जो उत्पीड़ित जाति के लोगों का बचाव करने के नाम पर, वास्तव में मेहनतकश लोगों को एकजुट संघर्ष की मुख्यधारा से अलग करते हैं जहाँ किसी भी व्यक्ति के जाति, समुदाय आदि के बारे में नहीं पूछा जाता।'

लेकिन एकता का टॉनिक उत्पीड़ित जातियों, महिलाओं, आदिवासियों द्वारा अनुभव की गई सामाजिक तिरस्कार के सवालों को समाप्त करने के लिए नहीं था, या जिन्होंने ऊँच-नीच आधारित अन्य प्रकार की हिंसा के साथ-साथ वर्गीय भेदभाव आधारित हिंसा का सामना किया। इन सवालों पर विचार विमर्श होना था। भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन को सभी शोषित लोगों की एकता की आवश्यकता और सामाजिक विभाजन के आधार पर कुछ विशेष प्रकार के उत्पीड़न पर ज़ोर देने के बीच के खींचतान को लेकर सटीक संतुलन स्थापित करने में कई दशक लग गए। भारतीय साम्यवाद द्वारा अख़्तियार की गई शुरुआती संगठनात्मक राह थी, वर्ग आधारित संगठनों के मंच का उपयोग खुले तौर पर जाति उत्पीड़न, धार्मिक अधिनायकवाद और पुरुष श्रेष्ठतावाद पर हमला करने के लिए करना। लेकिन यह जल्द ही स्पष्ट हो गया कि यह काफ़ी नहीं था।

EQUALITY
STRIKE!
STOP PRICE RISE

गाँठ

श्रमिक वर्ग मज़दूरों के अगोचर काया से मिलकर नहीं बना होता है। यह सामाजिक पदानुक्रम और तिरस्कार का अनुभव करना वाले लोगों से मिलकर बना है, जिन्हें उन पदानुक्रमों से लड़ने के लिए ख़ासा ज़ोर लगाने की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि भारतीय साम्यवाद को अंततः 1980 के दशक के बाद से अखिल भारतीय जनवादी महिला समिति (AIDWA) और तमिलनाडु अछूतोद्धार उन्मूलन मोर्चा जैसे कई संगठनात्मक मंचों का निर्माण करना पड़ा, जो वामपंथ की वर्गीय माँगों के साथ-साथ उन विशिष्ट पदानुक्रमों पर ध्यान केंद्रित करे जिनके ख़िलाफ़ लड़ने की आवश्यकता है। इस बिंदु को स्पष्ट करते हुए सीपीआई(एम) की नेता और AIDWA के पूर्व अध्यक्ष वृंदा करात बताती हैं:

> वर्ग की एक यांत्रिक समझ अक्सर समस्याग्रस्त होती है। जब मार्क्स ने कहा कि दुनिया के मज़दूरों एक हों, तो वे पुरुष मज़दूरों की बात नहीं कर रहे थे। हम उस दोहरे बोझ के कई रूपों को एकीकृत करने में असमर्थ हैं जिसका सामना हमारे संघर्ष का अभिन्न अंग, हमारी कामकाजी महिलाएँ करती हैं। सभी सफल क्रांतियों ने दिखाया है कि क्रांति में कामकाजी महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हम जानते हैं कि रूस में फ़रवरी क्रांति महिला कार्यकर्ताओं के विशाल सड़क प्रदर्शनों से शुरू हुई थी।
>
> भारत में हमारे अनुभव के अनुसार, जेंडर के अलावा, श्रमिक वर्गों के भीतर एक तबक़ा और है जिसके साथ जाति के आधार पर उत्पीड़न और भेदभाव होता है, तथाकथित अछूतों, दलितों का एक बड़ा हिस्सा है जो सामाजिक सीढ़ी के सबसे निचले पायदानों पर धकेल दिए गए हैं। दलितों के अधिशेष मूल्य के संग्रहण को तेज़ करने के लिए जाति एक साधन के रूप में कार्य करती है। कुछ इसी तरह का हमला आदिवासी समुदायों के अधिकारों पर भी हो रहा है, उनके ज़मीन, जंगलों पर कॉर्पोरेट क़ब्ज़ा कर रहे हैं, उनके इतिहास को नष्ट किया जा रहा है, उनकी संस्कृतियों, भाषाओं और जीने के तरीक़ों तक पर हमला हो रहा है। भारत में कोई भी वर्ग संघर्ष दलितों के ख़िलाफ़ जन्म आधारित वंशानुगत जाति व्यवस्था या आदिवासी मज़दूरों के सामने आने वाले विशिष्ट मुद्दों को चुनौती दिए बिना सफल नहीं हो सकता। मुझे लगता है कि यह नस्ल, धर्म-आधारित भेदभाव या अन्य देशों में अप्रवासियों के संदर्भ में भी उतना ही प्रासंगिक होगा।
>
> ये पहलू पिछली सदी में और श्रमिक वर्ग के संघर्षों में बढ़े हैं, इन पहलुओं की अनदेखी करने का नुक़सान भी उन्हें उठाना पड़ा है और इससे ख़ुद को कमज़ोर भी किया है, उन पर नस्लवादी या जातिवादी होने का वैध

> आरोप भी लगा है। लिहाज़ा, वर्ग-चेतना को आवश्यक रूप से विशिष्ट शोषण की चेतना को शामिल करना चाहिए क्योंकि श्रमिकों को उनकी जाति या नस्लीय उत्पत्ति के कारण या उनके लैंगिक पहचान के कारण इसका सामना करना पड़ सकता है।

जबकि भारत में संघर्षों को अपनी ही जटिलता का सामना करना पड़ रहा था, ब्राज़ील में, हेलेथ सैफ़्रियोटी (1934-2010) ने लंबे तानाशाही (1964-1985) की अवधि के दौरान आज़ादी के चलने वाले आंदोलनों की गहराई में जाकर उस बात को समझने की कोशिश की, जिसका उल्लेख उन्होंने 'गाँठ' के रूप में किया। उन्होंने इस बात को समझाया कि पूँजीवाद, जातिवाद और पितृसत्ता के धागे आपस में मिलकर एक मज़बूत 'गाँठ' की शक्ल अख़्तियार कर लेते हैं जो मुक्ति के एजेंडे को आगे बढ़ाने के लिए सामाजिक ताक़तों की क्षमता पर भारी पड़ता है। साम्राज्यवाद के परिणामस्वरूप, दुनिया के कुछ हिस्सों - ख़ास तौर पर अफ़्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के महाद्वीपों- को स्थायी रूप से मज़दूरी की ऋणात्मक स्फीति का सामना करना पड़ रहा है। दुनिया के इन क्षेत्रों में श्रमिकों को उनकी मज़दूरी में वृद्धि और उनके जीवन स्तर में सम्मानजनक बढ़ौतरी से रोका गया था। वेतन में सामान्य ऋणात्मक स्फीति ने सामाजिक पुनरुत्पादन के सवाल को लगभग असंभव बना दिया, साथ ही किसान तथा मज़दूर वर्ग के पुनरुत्पादन का सामाजिक भार-जिनमें से मोटे तौर पर अनिश्चित और असंगठित काम ही था-अधिक-से-अधिक महिलाओं को ही उठाना पड़ा। सैफ़्रियोटी ने अपनी कालजी कृति वीमेन एंड क्लास सोसाइटी (1976) में तर्क दिया कि उन्नत पूँजीवादी देशों में महिलाओं को मुक्ति नहीं मिल सकती है, क्योंकि उन देशों में भी पूँजीवाद परिवार के ढाँचे पर निर्भर था - महिलाओं के लिए जिसका मतलब था - पुनरुत्पादन के सामाजिक भार को वहन करना। यदि उन देशों में ऐसी स्थिति थी, तो दक्षिण में महिलाओं पर दबाव इससे कहीं अधिक था। सैफ़्रियोटी ने लिखा, वर्ग-समाज, लिंग, नस्ल और जातीयता के सामाजिक पदानुक्रम और संसाधनों तक पहुँच के आधार पर बना है। यह धारणा कि नारीवाद के बिना समाजवाद संभव नहीं है, सैफ़्रियोटी के लेखन का बुनियादी आधार है। न ही जातिवाद और धार्मिक असहिष्णुता का मुकाबला किए बिना समाजवाद लाया जा सकता है। मार्क्सवादी परंपरा को इस 'गाँठ' का सीधे तौर पर मुक़ाबला करना था।

A MULHER NA
LOCOMOÇÃO DE CLASSE

राष्ट्रीय मुक्ति मार्क्सवाद का अध्ययन

मार्क्सवाद की प्रभुत्ववादी समझ की सीमाओं में से एक यह धारणा है कि 'सिद्धांत' का उत्पादन यूरोप और उत्तरी अमेरिका में होता है, जबकि दक्षिणी गोलार्ध के देशों में इसका 'अभ्यास' होता है। दक्षिणी देशों के क्रांतिकारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे पुस्तिका और गाइड लिखें, अपने आंदोलनों के बारे में छिट-पुट नोट्स लिखें, लेकिन व्यापक रूप से मार्क्सवाद के लिए अपना पर्याप्त योगदान न दें। अक्सर कहा जाता है कि माओत्से तुंग, हो ची मिन्ह और चे ग्वेरा ने ऐसा क्या लिखा जिसका वास्तविक महत्व हो? ऐसा दृष्टिकोण रखने वाले यह आक्षेप लगाते हैं कि क्रांतिकारी युद्धों के मैनुअल उपयोगी होते हैं, लेकिन वे पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के परिवर्तन की समझ के प्रति निर्णायक नहीं होते हैं। ऐसा कहने में एक हिस्सा अहंकार का होता है। दूसरे हिस्सा समझदारी की कमी का होता है कि हमारे आंदोलन हमारे बुद्धिजीवियों और नेताओं से किस प्रकार के लेखन की माँग करते हैं।

पेरी एंडरसन ने दशकों पहले लिखा था कि 'अपनी संपूर्णता में पश्चिमी मार्क्सवाद की एक छुपी हुई विशेषता है ... वह यह कि ये 'पराजय' का एक उत्पाद है।' लेकिन दक्षिण में मार्क्सवाद को राजनीतिक आंदोलन के रूप में स्पष्ट रूप से पराजित नहीं किया गया था। यह आगे अपना संघर्ष जारी रखे हुए है, इसका नेतृत्व इन संघर्षों से उपजा है, जो अभी तक मोर्चे से ग़ायब नहीं हुआ है। उनके ग्रंथों में हमेशा उच्च सैद्धांतिक विश्लेषण नहीं होता है, उनका लेखन मोमबत्ती की रौशनी की तरह होता है, प्रतिरोध के स्वर उसके चारों और गूँज रहे होते हैं। रचनात्मक रूप से क्रांतिकारी विचारों को आगे बढ़ाने वाले इन ग्रंथों में अंतर्निहित नवाचारों के लिए, इसके स्वरूप और इसकी सामग्री के लिए, उनके काम को गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

سرمایہ

संदर्भ ग्रंथ सूची

Alavi, Hamza, Capitalism and Colonial Production, Croom Helm, 1982.

Amel, Mahdi, Arab Marxism and National Liberation: Selected Writings, ed. Hicham Safieddine, LeftWord Books, 2021.

Amin, Samir, Accumulation on a World Scale. A Critique of the Theory of Underdevelopment, Monthly Review Press, 1974.

Anderson, Perry, Considerations on Western Marxism, New Left Books, 1976.

Bunting, Brian, Moses Kotane. South African Revolutionary, Inkululeko, 1975.

Cabral, Amilcar, Resistance and Decolonization, ed. Dan Wood, Rowman & Littlefield, 2016.

Castro, Fidel, The Gigantic Casino: Reflections on the World Financial Crisis, LeftWord Books, 2009.

Congress of the Peoples of the East, Baku, 1920, ed. Brian Pearce, New Park, 1977.

Dubois, W.E.B., Black Reconstruction. An Essay Toward a History of the Part Which Black Folk Played in the Attempt to Reconstruct Democracy in America, 1860-1880, Harcourt, Bruce, 1935.

Frantz Fanon, The Wretched of the Earth, Penguin Books, 1967.

Gramsci, Antonio, Selections from the Political Writings, 1910-1920, Lawrence and Wishart, 1977.

Ibrahim, Ibrahim A., 'Salama Musa: An Essay on Cultural Alientation', Middle Eastern Studies, vol. 15, no. 3, 1979.

Karat, Brinda, 'The Russian Revolution Is Still Relevant Today', LeftWord Books blog, 2017.

Katz, Claudio, Teoría de la Dependencia, cincuenta años después, Batalla de Ideas, 2018.

Kotane, Moses, 'For Africanisation of the Party', Letter to the Johannesburg District Party Committee, 23 February 1934.https://www.newframe.com/from-the-archive-for-africanisation-of-the-party/

Lenin, V. I., Selected Writings, ed. Vijay Prashad, LeftWord Books, 2018.

Liberate the Colonies: Communism and Colonial Freedom, 1917-1924, ed. John Riddell, Vijay Prashad, NazeefMollah, LeftWord, 2019.

Mariátegui, José Carlos, Seven Interpretative Essays on Peruvian Reality, University of Texas, 1990.

Marx, Karl and Fredrich Engels, On the National and Colonial Question, ed. Aijaz Ahmad, New Delhi: LeftWord-Books, 2001.

Mella, Julio Antonio. Documentos y artículos. La Habana: Instituto Cubano del Movimiento Comunista y la Revolución de Cuba. Instituto Cubano del Libro, 1975.

Monal, Isabel. 'Cuban Foundational Marxist Thought'. International Journal of Political Economy, vol. 34, no. 4, 2004-05.

Namboodiripad, E.M.S. 2010. History, Society and Land Relations: Selected Essays. New Delhi: LeftWord Books.

Prashad, Vijay. Red Star Over the Third World, LeftWord, 2017.

Prashad, Vijay. The Poorer Nations: A Possible History of the Global South, LeftWord Books, 2013.

Saffioti, Heleieth. Women and Class Society, Monthly Review, 1978.

Vanden, Harry E., and Marc Becker, eds. 2011. José Carlos Mariátegui: AnAnthology. New York: Monthly Review Press.
Zedong Mao, Selected Works, Foreign Languages Press, 1965v

tricontinental

Tricontinental: Institute for Social Research is an international, movement-driven institution focused on stimulating intellectual debate that serves people's aspirations.
www.thetricontinental.org

Instituto Tricontinental de Investigación Social es una institución promovida por los movimientos, dedicada a estimular el debate intelectual al servicio de las aspiraciones del pueblo.
www.eltricontinental.org

Instituto Tricontinental de Pesquisa Social é uma instituição internacional, organizada por movimentos, com foco em estimular o debate intelectual para o serviço das aspirações do povo.
www.otricontinental.org